अन्तर्राष्ट्रीय

शीत युद्ध समाप्त: पूरा यूरोप एकता के सूत्र में

यह दशक इस मायने में एक यादगार बनकर रह जायेगा जिसने विश्व मंच पर शांति और सहयोग के ऐसे माहौल पैदा कर दिये जिसकी पिछले ४५ वर्षों से कल्पना भी नहीं की जा रही थी। उसमें भी १९९० का वर्ष तो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक रिकार्ड बनाकर जा रहा है, जिसने समूचे यूरोप को परस्पर प्रतिद्वंद्विता और परमाणु हथियारों की होड़ की दुनिया से निकालकर बिल्कुल अलग वातावरण में सांस लेने के रास्ते खोल दिये जहां 'हथियार और सिर्फ हथियार' की बात अब कोई नहीं करना चाहता।

जर्मन एकीकरण के मार्ग में आने वाली बाधाएं जैसे-जैसे छंटती जा रही थीं, ठीक उसी तरह यूरोपीय एकीकरण की संभावना भी प्रबल होती जा रही थी। बल्कि अगर यों कहें कि पिछले वर्ष के अंत में पूर्वी यूरोप के तमाम देशों की समाजवादी व्यवस्थाओं का एक-एक करके चरमराना और उनका पश्चिम की पूंजीवादी (जैसा कि समाजवादी देश पश्चिम यूरोप को कहा करते थे) व्यवस्था की ओर झुकते चले जाना ही शीतयुद्ध की समाप्ति का संकेत था।

और जर्मन एकीकरण के संपन्न होने में इस विवर्तन ने महती भूमिका निभायी। जर्मन चांसलर हेल्मुट कोल को यह श्रेय अवश्य है कि उन्होंने दोनों जर्मनी से सम्बन्धित सभी पक्षों को एक मुद्दे पर सहमत करने में सफलता प्राप्त की लेकिन परिस्थितियां इतनी तेजी से बदल रही थीं कि उन्हें बहुत ज्यादा मिहनत नहीं करनी पड़ी, तभी तो वो बागडोर भी अंततः एकीकृत जर्मनी को मिल गयी जिसके दोनों छोर परस्पर विपरीत विचारधारा वाले खेमों ने थाम रखे थे।

उस समय सोवियत राष्ट्रपति मिखाईल गोर्बाचेव अपनी और पूर्वी यूरोप के अपने पड़ोसी देशों की सुरक्षा के लिए काफी चिंतित हो गये थे। उन्हें लग रहा था कि दोनों जर्मनी के एक होने से उनके खेमे (वार्सा संधि) का एक देश जाता रहेगा और यह असंतुलन शायद भविष्य में खतरे का कारण बन जाये। इसलिए श्री गोर्बाचेव बार-बार इस बात पर जोर दे रहे थे कि एकीकृत जर्मनी तटस्थ रहे, खासकर नैटो (पश्चिमी देशों का सैनिक संगठन) में तो कतई न रहे। जाहिर है कि सोवियत राष्ट्रपति ने भी नहीं सोचा था कि वो दिन भी आयेगा जब नैटो और वार्सा संधि दोनों ही अस्तित्वहीन हो जायेंगे तथा सब के सब हथियारों में कटौती करने पर सहमत हो जायेंगे।

२१ नवम्बर को पेरिस में तैयार दस्तावेज यूरोपीय राजनीतिक इतिहास का एक नया अध्याय होगा। १९ पृष्ठों के इस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले ३४ उत्तरी अमरीकी और यूरोपीय देशों ने इसे 'चार्टर ऑफ पेरिस' की संज्ञा दी है। पेरिस में तीन दिनों (१९, २० और २१ नवम्बर) के यूरोपीय सुरक्षा और सहयोग सम्मेलन द्वारा तैयार इस दस्तावेज के पहले पृष्ठ में ही नैटो और वार्सा

सबूत है कि हथियारों में कटौती करने के साथ-साथ यूरोप का एक नया ढांचा तैयार किया जायेगा जिसमें किसी भी छोटे देश को किसी बड़े देश से भय नहीं होगा।

हथियारों में कटौती करने से सम्बन्धित प्रपत्र पर तो सम्मेलन के पहले ही दिन सम्बन्धित देशों ने मंजूरी दे दी। सबसे पहले मेजवान फ्रांस के राष्ट्रपति फ्रांस्वा मित्तरां ने दस्तखत किये और फिर श्री गोर्बाचेव तथा अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने अपनी सहमति के सबूत दर्जकर अन्य देशों की ओर बढ़ा दिये। यह पहला सबसे अनुकूल संकेत था। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि तब तक एक 'खुली छत' के निर्माण के लिए कोशिशें जारी रखने पर सबसे ज्यादा जोर दिया गया है जिसमें असुरक्षा की आशंका से परेशान सभी विकासशील देश अपने को भयमुक्त महसूस कर सकें। इसलिए एक सैनिक जांच आयोग बनाया गया है जो निष्पक्ष रूप से सभी बड़े देशों की सैनिक क्षमता और सैनिक अड्डों की जांच करेगा ताकि कोई देश चोरी छिपे हथियारों की बढ़ोत्तरी करते रहने के बावजूद गलतबयानी न कर सकें। रासायनिक हथियारों के निर्माण पर गंभीर चिंता व्यक्त की गयी और चारों 'बड़े' (अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और सोवियत संघ) ऐसे हथियारों का उत्पादन तुरंत बंद करने पर सहमत हो गये।

यह बैठक आज से १५ साल पहले (एक अगस्त, १९७५) हेलसिंकी में हुए यूरोपीय सुरक्षा और सहयोग सम्मेलन की अगली और उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण कड़ी साबित हुई। उस सम्मेलन में भी ३५ देशों ने भाग लिया था और पहली बार शीतयुद्ध समाप्त करके तनावमुक्त यूरोप के निर्माण की जरूरत महसूस की गयी थी। लेकिन उस समय न तो यूरोप की राजनीतिक परिस्थितियां वैसी थीं न ही सोच में आज की तरह का बदलाव आ पाया था, तभी तो १९५४ में तत्कालीन सोवियत विदेश मंत्री मोल्तोव द्वारा चार महाशक्तियों के बर्लिन में हुए सम्मेलन के बाद एक सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था बनाने के सुझावों को किसी ने भी गंभीरता से नहीं लिया था और १९७५ में मोल्तोव को याद करने की जरूरत पड़ी। अलबत्ता उस समय भी तत्कालीन सोवियत राष्ट्रपति लियोनिद इल्यिच ब्रेजनेव ने सही दिशा में जागरूक कदम और एक नये युग की शुरुआत बताया था लेकिन तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति जेराल्ड फोर्ड ने शायद तब तक टकराव के माहौल से उब नहीं महसूस किया था, इसलिए वैसे प्रयासों का स्वागत करने की औपचारिकता भर पूरी कर दी। ऐसा नहीं हुआ है कि १५ साल के अंतराल के बाद बात की बात में इस तरह का आयोजन संभव हो गया और यूरोप के तमाम देशों ने अचानक एक दूसरे के हित के बारे में सोचने की जरूरत महसूस कर ली, तब तो १९५४ की ही पुनरावृत्ति होती।

छिटपुट प्रयास तो १९७५ के बाद से ही जारी थे लेकिन पिछले दो साल के अन्दर विएना को मुख्यालय बनाकर इस क्षेत्र में बिल्कुल सिलसिलेवार ढंग से आपस में सलाह मशविरा का क्रमिक अभियान चला।

इस समझौते के मुताबिक सोवियत संघ न केवल पूर्वी यूरोप के विभिन्न देशों से अपनी फौज और हथियारों के जखीरे हटा लेगा बल्कि खुद की सामरिक शक्ति में भी कटौती करने को सोवियत प्रतिनिधि तैयार हो गये। करीब २०,००० टैंक हटाने पर तो सम्मेलन के दौरान ही सहमति हो गयी। हंगरी के प्रतिनिधि ने सुझाव दिया कि सोवियत संघ अब, तब तक पूर्वी यूरोप में अपनी फौज नहीं भेजे जब तक कि कोई देश मदद न मांगे। इसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया और कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गयी।

सबसे ज्यादा खतरा अभी एकीकृत जर्मनी से पैदा होने की संभावना है, जिससे सोवियत संघ क्या पश्चिम के देश भी चिंतित हैं। एकीकरण का मामला महीनों तक टलते रहने के पीछे यही मुख्य वजह थी। लेकिन जर्मनी ने अपने प्रस्ताव से सबको आश्वस्त कर दिया। सम्मेलन के तीसरे दिन जर्मनी के रक्षा मंत्रालय की एक रिपोर्ट जर्मनी के रक्षा सलाहकार द्वारा आगंतुकों के सामने प्रस्तुत की गयी। रिपोर्ट के मुताबिक अब पूर्वी जर्मनी पूरी तरह पश्चिम जर्मनी में मिल चुका है, इसलिए बॉन अपने ७,२८३ टैंकों में कटौती करके उन्हें ४,१६६ करने जा रहा है। बाकी ३,११७ टैंक या तो खत्म कर दिये जायेंगे अथवा नैटो के वैसे देशों को दे दिये जायेंगे जिनके पास अपनी सुरक्षा के लिए भी अपर्याप्त हथियार हैं। जर्मन प्रतिनिधि ने एक कदम आगे बढ़कर कहा कि जर्मनी के बख्तरबंद कारवाहक ८,८५८ से घटकर ३,४४६ हो जायेंगे और उसके साथ ही समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले नैटो और वार्सा संधि के २२ देशों ने उसी अनुपात में अथवा उससे कम कटौती करने पर सहमति व्यक्त की और देशों ने अपना कोई आंकड़ा पेश नहीं किया। यहां इस बात का जिक्र कर देना समीचीन होगा कि नैटो (उत्तर अतलांतिक संधि संगठन) के सदस्य देशों द्वारा प्रकारान्तर से इधर हाल में बराबर यह कहा जाता रहा है कि इस संगठन की अब कोई उपयोगिता नहीं रह गयी है और अगर औपचारिक रूप से कायम रहे भी तो इसका सैनिक स्वरूप बदलकर सिर्फ एक राजनीतिक संगठन बना रहने दिया जाये। जाहिर है उनका इशारा वार्सा संधि के देशों की ओर है जो अब नैटो को चुनौती देने की बात तो दूर, उल्टे उन्हीं से मदद को मोहताज बने हुए हैं। इसलिए वार्सा संधि के देशों ने तो बारी-बारी से स्वयं को इस दिवालिया संगठन से अलग कर दिया, फिर तो वार्सा संधि का अस्तित्व खत्म होना स्वाभाविक है। सोवियत संघ को गुट (वार्सा संधि) के देशों की ओर देखना तो दूर अपनी ही डांवाडोल राजनीतिक और आर्थिक हालत में सुधार कर पाना कठिन हो रहा है, इसलिए सोवियत संघ की एक अनुकूल और सामान्य माहौल की तलाश जायज है। लेकिन नैटो की सामरिक और आर्थिक स्थिति ज्यों-की-त्यों है।

इसके बावजूद शांति की तलाश के क्षेत्र में पहल पश्चिम की ओर से हुई है जो इस बात का सबूत है कि उस मानसिकता में पूरी तरह बदलाव आ गया है जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूरोप को दो प्रतिद्वंद्वी खेमों में बांट दिया था। वर्ना सम्मेलन के दूसरे दिन (२० नवम्बर) जब पोलैंड के प्रधानमंत्री तेदयूज मेजोविकी ने कहा कि यूरोप का एक खेमा है जो समृद्धशालियों का है और दूसरा खेमा आर्थिक रूप से दिवालिया और जातीय दंगों से अस्तव्यस्त यूरोप का है इनमें समानता की बात तो कपोल कल्पना प्रतीत होती है, तो पश्चिमी गुट ने इसे गंभीरता से नहीं लिया होता। तुरंत सब के सब (अर्थात् पश्चिमी देश) यूरोपीय सुरक्षा और सहयोग सम्मेलन के प्रावधानों के तहत आर्थिक सहायता देने को राजी हो गये। यह भी तय हो गया कि जी.ए.टी.टी. (जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ्स एंड ट्रेड) नियमों के तहत पूर्वी यूरोप में स्वतंत्र उद्यम को बढ़ावा दिया जायेगा ताकि सहयोग और सद्भावना की कड़ी और मजबूत हो।

इस सम्मेलन की एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि एक स्थायी समिति बना दी गयी है जो समझौते के सभी प्रावधान लागू करने की जांच करेगा। १९९२ में हेलसिंकी में पुनः बैठक होगी जिसके बारे में अनुमान है कि वह एकीकृत यूरोप का सम्मेलन होगा। प्राग में यूरोपीय सुरक्षा और सहयोग सम्मेलन का एक छोटा सचिवालय बनाया जायेगा और विएना में एक केन्द्र काम करेगा जिसकी जिम्मेदारी आपस के तमाम विवाद बातचीत के जरिए सुलझाने की होगी जिसमें सब सहयोग करेंगे।

शशिधर खां